द्वितीय अध्याय

औपनिवेशिक सौंदर्यबोध

'मुझे चाँद चाहिए' के आधार पर सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में अभिव्यक्त औपनिवेशिक सौन्दर्यबोध का विश्लेषण करना इस अध्याय का लक्ष्य रहा है। कृषक-संस्कृति द्वारा प्रतिष्ठित कला और सौंदर्य संबन्धी मान्यताओं को उपनिवेशवाद ने किस तरह विचलित और विस्थापित किया, उस बिंदु पर दृष्टि डाली जाएगी। कला और कलाकार का द्वन्द्व, रचना प्रक्रिया, कलाक्षेत्र में प्रशिक्षण की भूमिका आदि विभिन्न प्राचलों पर 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में अभिव्यक्त औपनिवेशिक सौन्दर्यबोध पर अध्ययन किया जाएगा।

बीसवीं सदी का समाज अनेक असाधारण विशेषताओं से भरा हुआ है। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति, औद्योगिकी और प्राविधिक यंत्रों का चकाचौंध देनेवाला विकास आदि ने सामाजिक संरचना को बडी मात्रा में बदल दिया है। मानवीय सभ्यता के विकास के तीन स्पष्ट चरण होते हैं - कृषि-प्रधान समाज, औद्योगिक समाज और सूचना - प्रौद्योगिकी समाज। दार्शनिक अल्विन टाफ्लर ने अपनी किताब 'दी थर्ड वेव' में इस विकास प्रक्रिया को यों व्यक्त किया है - "समाज के विकास के सिलसिले में पहली लहर कृषक संस्कृति, लगभग हज़ारों साल तक ज़ारी रही। दूसरी लहर औद्योगिक संस्कृति, महज तीन सौ साल तक सक्रिय रही।

वर्तमान समाज का इतिहास इतना गतिशील है कि तीसरी लहर इतिसाह से कुछ समय के अंतर्गत ही समाप्त हो जाएगा।"[१]

टाफ्लर के अनुसार पहली लहर कृषक संस्कृति की होती है जो अठारहवीं सदी तक मानी जाती है जो निजी सौंदर्यबोध की स्वायत्तता पर आधारित थी। उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रांति को दूसरी लहर कही गई है जो सामंती सौंदर्यचेतना से ओत-प्रोत है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से आज तक का युग तीसरी लहर कहा गया है जहाँ बाज़ार तंत्र और सूचना-प्रौद्योगिकी के अनुकूल सौंदर्यबोध की पुनर्रचना दिखाई पडती है।

पहली लहर के कृषि-प्रधान समाज में कला का शासकीय स्वरूप उभर कर आया। कला और संस्कृति समाज पर राज्य-सत्ता का नैतिक एवं बौद्धिक वर्चस्व स्थापित करने के साधन थे। कला और साहित्य के जो प्रतिमान निर्धारित थे उनपर राजसत्ता का विशेष प्रभाव रहा। कवि या कलाकार शासक को पूजनीय मानकर इसके स्तुतिगान करने का रवैया प्रचार में था। आम जनता के बीच कला का प्रचार एवं प्रसार लोक-गीतों, लोक-नृत्यों द्वारा होते थे। लेकिन कला के स्वीकृत प्रतिमानों की दृष्टि में लोक-कलाओं को अमानक कहकर हाशिए पर रखा गया। उन्हीं कलारूपों को सामाजिक धारा में प्रतिष्ठित होने का मौका मिला जो नाट्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र के अनुरूप हो। इन कलाओं की प्रस्तुति के संदर्भ निर्धारित हुए थे। जैसे फसल काटते वक्त, लकडी काटते समय आदि।

सभ्यता की पहली लहर-कृषक संस्कृति में कला और सौंदर्यबोध, प्रकृति से निकट संबन्ध रखते थे। मिट्टी का लचीलापन और प्राकृतिक तत्वों के रंग और ध्वनियाँ कला के आधारभूत तत्व रहे।

सामंती सभ्यता ने इन लोक कलाओं का मानकीकरण कर दिया। कला और सौंदर्य के शास्त्र रचे गए। साहित्य और कला की समीक्षा और आस्वादन इन मापदण्डों के आधार पर होने लगी। सामंतवादी सभ्यता ने इन प्रतिमानों की पुनर्रचना की। मशीनों ने कला के प्राचलों को प्रतिष्ठित किया। सौन्दर्यात्मक संरचना में ध्वनि, गति और रंग की भूमिका निर्धारित हो गई। औद्योगिक सभ्यता ने एक ओर मशीनों एवं उद्योगों के द्वारा सौंदर्यात्मक संरचना की सृष्टि की है तो दूसरी ओर कला को प्रशिक्षण की चीज़ घोषित कर दी। सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास में प्राकृतिक सौंदर्य के साथ सामंतवादी सौंदर्यचेतना, कला के मशीनीकरण और कला के प्रशिक्षण की ओर भी संकेत किया है।

2.1. सामंतवादी सौंदर्यचेतना

वर्माजी के 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा के पिता, संस्कृत अध्यापक एवं परिवार के अन्य लोग सामंतवादी सौन्दर्यचेचना का प्रतिनिधित्व करते हैं जो व्यवस्थित विचारधाराओं का तेवर हैं। वर्षा को निजी सौन्दर्यबोध है जिसके मुताबिक वह अपनी जीविका चलाना चाहती है। वर्षा के इन विकल्पों में हस्तक्षेप करते हुए सामाजिक व्यवस्था के भावबोध में मौजूद पुरुष वर्चस्व के कई नमूने यहाँ विद्यमान हैं।

पिताजी ने अपने समाज के प्रचलित सौन्दर्यबोध के मुताबिक अपनी दो बेटियों का नामकरण पुराण की दो माननीय माँ गायत्री एवं यशोदा के नाम रखकर संपन्न किया। बडी बेटी गायत्री ने रामजी की गाय के समान आज्ञाकारी ठहर कर अपना नाम सार्थक माना, पर छोटी यशोदा ने हाईस्कूल भर्ती के समय अपना नाम बदलकर वर्षा वशिष्ठ कर दिया। पिताजी अपने सामंती सौंदर्यबोध को यों व्यक्त करते हैं - "इसके तुरंत बाद ही पिता ने पूरी 'कालिदास ग्रंथावली' में पेंसिल से काट कर दी और सिलबिल की ओर देखे बिना कहा, 'अभी कुछ शब्द तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं।' "[२] समाज के प्रतिष्ठित दायरे से बाहर निकली बेटी की हैसियत से पिताजी की परेशानी यहाँ व्यक्त होती हैं। पिताजी चाहते हैं कि बेटी समाज के निर्धारित सौंदर्यबोधीय प्रतिमानों के बाहर न जाएँ।

उपन्यास में कालिदास की रचनाओं के द्वारा सामंतवादी सौदंर्यबोध का पर्दाफाश हुआ है। पिताजी से संकलित कालिदास ग्रंथावली पढते हुए वर्षा सामंती सौदंर्यचेतना का परिचायक बनी थी। उसकी पहली मंच-प्रस्तुति 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' के संदर्भ में यही भावबोध उसे उत्तेजित करती है। कविकुल गुरु द्वारा प्रतिपादित नारी देह के वर्णन से वर्षा विभोर होकर खुद महसूस करने लगती है, "सिलबिल ने उज्जयिनी की अभिसारिका के समान कदली स्तंभ-सी जंघाओं का चिकनापन महसूस किया, मालविका के समान वक्ष पर चंदन का लेप लगाया।... इंदुमती के समान कमलनाल को दोनों उरोजों के बीच में रखकर सौदंर्य का प्रतिमान निर्धारित किया।... और चोटी खोल कर मुआयना किया कि काले, मुलायम कुंतल-गुच्छ काम-कलशों के कितने निकट जा सकते हैं..."[३]

एक अन्य प्रसंग में वर्षा, दिव्या के साथ हुई मुठभेड के द्वारा संपन्न हुए मानसिक उत्तेजना के बारे में रघुवंश की पंक्तियाँ यों प्रयुक्त करती है - "रघु के सिंहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो गयी, फूलों की सुगंधि... 'इन पाँचों तत्वों के गुण भी बढ़ने लगे।' मिस कत्याल की मैत्री से वर्षा के जीवन में ऐसे ही सुखद परिवर्तन हुए।"[४]

परिवार के आर्थिक अभाव के कारण वर्षा, दो महीने से स्कूल में फीस नहीं दे पायी। यह जानकर मिस कत्याल ने वर्षा के लिए दो बोर्डरों का ट्यूशन बंदोबस्त कर दिया था। उन दिनों लडकियों की कमाई वर्जित बात थी। अतः वर्षा ने परिवार में इसका जिक्र नहीं किया था। उसने सोचा महीने भर बाद नये-नये नोट दिखाकर सबको चमत्कृत कर देगी। पर एक दिन बाज़ार के किसी मित्र से पिताजी को इसकी जानकारी मिली। घर आते ही अपनी बेटी को बुलाकर पूछ-ताछ की तो वर्षा ने सिर्फ यह कह दिया कि दो पैसे और आयेंगे तो घर की मदद ही होगी। पर नारी का स्वावलंबी होना सामंतवादी व्यवस्था से परे की बात थी। बेटी की पढाई में हुए आर्थिक अभाव की पूर्ति में अपनी असमर्थता के बावजूद वे चाहते हैं कि बेटी सामाजिक परिकल्पना के अनुसार पारिवारिक ढाँचे के अंतर्गत ही सुरक्षित रहे। बेटी की प्रतिक्रिया के सामने पिताजी थोडी चुप्पी के बाद गहरी साँस लेकर बोले "फिर भी यह अकरणीय है।"[५]

सामंतवादी सौंदर्यचेतना में वर्ग-जाति आदि के आधार पर आपसी रिश्ता निर्धारित था। उच्च-नीच जाति के बीच छुआछूत आपसी स्पर्धा आदि प्रथाओं का

भोलभाला थी। लडके-लडकियों का संबन्ध भी निर्दिष्ट दायरे से रूपायित था। सर्जनात्मक परिप्रेक्ष्य में भी दोनों का एकसाथ कार्यरत होना अमान्य मानते थे। 'मिस दिव्या' के प्रभाव से 'वर्षा' नाटक मंचन के सिलसिले में लडकों के साथ पूर्वाभ्यास करने लगी। यह जानकर पिताजी नाराज़ होकर पूछने लगे - "तेरे साथ लड़के भी काम कर रहे हैं। एक के साथ तू नाचती और गाना गाती है। कल के दिन कुछ ऊँच-नीच हो गया, तो हमें मुँह छिपाने को जगह नहीं मिलेगी।... लड़की की लाज मिट्टी का सकोरा होती है।"[६]

पिताजी के लिए अपनी बेटी की अपेक्षा परिवार की इज्जत ही महत्वपूर्ण बात थी, चाहे कला क्षेत्र में उसकी कितनी प्रगति हो। उपन्यास का कथ्यपक्ष सामंतवादी सौंदर्यचेतना के निर्दिष्ट प्रतिमानों को भेदकर गतिशील होता है।

2.2. औद्योगिक सौंदर्यचेतना

औद्योगिक क्रांति मशीनों के आविष्कार से सामाजिक संरचना में काफी बदलाव लायी। मशीनी संस्कृति नयी प्रविधियों को जन्म देने लगी। प्रो. सत्यमित्र दुबे का कहना है - "पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था ने कच्चे माल की आपूर्ति और अपने कारखाने के माल के बाज़ार की खोज में साम्राज्यवाद को बढावा दिया। पश्चिम यूरोप के अनेक देशों ने एशिया और आफ्रिका में अपने उपनिवेश कायम किए।"[७] उपनिवेशकों ने अपनी माँगों की पूर्ति केलिए उपनिवेशितों में अपना कब्जा डालना शुरु किया।

उत्तर उपनिवेशित भारत में इन लहरों का प्रतिमान विभिन्न स्तरों में द्रष्टव्य है। भारत में मौजूद पुरुष वर्चस्व की सामाजिक व्यवस्था के साथ उपनिवेशकों के पश्चिमी वर्चस्व ने दुहरी औपनिवेशिकता का प्रभाव अदा किया। आलोचक नरेश चंद्रकर के अनुसार "पूरब की प्रचलित छवि पूरब के यथार्थ की अभिव्यक्ति न होकर पश्चिम द्वारा निर्मित छवि है, उसी का आख्यान है।"[८] औपनिवेशित ताकतों ने यहाँ तीसरी दुनिया के सोच-विचार, भाषा, संस्कृति, कला, सौदर्यबोध आदि पर अघात पहूँचाकर, उन्हें औपनिवेशित परिस्थिति के अनुरूप ढाल दिया है। दूसरी ओर इन राष्ट्रों की नारियाँ पुरुष वर्ग द्वारा बनाई गई सौंदर्यात्मक एवं कलात्मक दृष्टि लादने को विवश हुई।

कलात्मक सौन्दर्य-चेतना का एक स्वीकृत तत्व प्राचीन भारत में मौजूद था। भारतीय कला, साहित्य एवं संस्कृति की उच्च आकांक्षा सौंदर्य ही रहा है। आलोचक रामविलाम शर्मा के शब्दों में "मनुष्य का सौंदर्यबोध उसके सामाजिक जीवन का ही परिणाम नहीं है, उससे भी पहले वह उसके प्रागमानवीय विकास का परिणाम है।"[९] भारतीय साहित्य के सबसे प्रमुख और मशहूर कवि कालिदास को कविकुल गुरू कहते आए हैं। कालिदास के काव्य से उसके समय की सामाजिक व्यवस्था को अलग नहीं किया जा सकता। कृषि-प्रधान समाज की व्यवस्थाओं से पोषित उनका काव्य-साहित्य प्राचीन समाज का प्रतिबिंब है, साथ ही ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों और निर्जीव रूढियों की प्रतिक्रिया भी।

औद्योगिक समाज में कलाकार महज कला का श्रमजीवी बन जाता है।

ऐसी सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप कला के क्षेत्र में रंगशालाओं, और मनोरंजन के अन्य केन्द्रों का सृजन आवश्यक हो गया। इस परिवेश में जनता से अभिनेता का संबंध कलाकार का होता है, परंतु अपने सेवायोजक के लिए वह सिर्फ उत्पादक श्रमिक होता है। उस समय के सत्ताधारी, पुरुष होने की वजह से तमाम व्यवस्थाएँ पुरुष के नियंत्रण में थीं। अतः कलात्मक सौंदर्यबोध पुरुष से ही निर्धारित होता था। दरअसल उस समय के तमाम सौंदर्यचेतना मर्दवादी दृष्टिकोण पर आधारित थी।

'मुझे चाँद चाहिए' औद्योगिक समाज के परिप्रेक्ष्य में पुरुष से नियंत्रित एवं सचांलित कलात्मक सौंदर्यबोध का सशक्त दस्तावेज है। इसमें नए कला प्रतिमानों के जिक्र करने में उपन्यासकार ने सफलता पायी है। इन नए प्रतिमानों के दो पक्ष द्रष्टव्य हैं कला का मशीनीकरण और कला का प्रशिक्षण। औद्योगिक समाज के समर्थन में अंग्रेज़ी नाटकों की मंचप्रस्तुति एवं नाटककारों के उद्धरणों से यह उपन्यास एक अनोखा परिवेश का सृजन करता है। संस्कृत नाटक की परिमार्जित अवतरण-शैली के साथ-साथ आधुनिक एवं उत्तर-आधुनिक कला-रूपों को आलोकित करते हुए कला क्षेत्र में आए भिन्न विकल्पों को अभिव्यक्त करने में यह उपन्यास सक्षम निकलता है।

2.2.1. कला का मशीनीकरण

विश्व में प्रगति की दूसरी लहर की औद्योगिक क्रांति ने कला-संस्कृति के माहौल में काफी बदलाव अदा किया। औद्योगिक क्रांति का यह परिणाम हर राष्ट्र में विभिन्न स्तर पर प्रकट होने लगा।

दैनिक जीवन में मशीनी तकनीक का हस्तक्षेप बहुत स्पष्ट और अधिनायकवादी रहा। यह मानव के भौतिक और मानसिक स्तर पर बदलाव लाया और उसकी पहचान को परिवर्तित करने में सक्षम रहा। मशीन ने संस्कृति, कला एवं साहित्य की प्रकृति को परिवर्तित किया। मशीनी तकनीक ने मनुष्य की उत्पादन क्षमता को बढावा दिया। काम का आधार खेती से कारखाने बन गया। अब संयोजित प्रयासों की मांग हुई, मानव आपस में ज्यादा आश्रित होने लगे। बाद में श्रम का विघटन, संयोजन, कौशल का समीकरण आदि की ज़रूरी हुई।

औद्योगिक समाज तकनीक से ज्यादा प्रभुत्वशाली होने की वजह से रोजगारी के सारे आयाम औद्योगिक प्रतिमानों के अनुसार रूपायित होने लगे। पूंजीवादी औद्योगिक समाज व्यवस्था में मशीनीकरण के प्रभाव से उत्पादक और उत्पादन का संबन्ध क्षीण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप तमाम कलात्मक उत्पादन बिकाऊ जिंस के रूप में विनिमय (बाज़ार) में आने लगे। कला एवं कलाकार, कलात्मक कौशल से पृथक होने लगे। मानकीकरण, विशेषीकरण और एकीकरण की प्रविधि से श्रम का विभाजन अस्तित्व पाने लगा। यहाँ सब कुछ तकनीक के नियंत्रण में पडा। आलोचक कुंवरपाल सिंह का कथन है “हमारी अवधारणा के अनुसार यहाँ तकनीक, विनिमय पद्धति तथा विधि को भी और पैदावार के वितरण को भी निश्चित करती है और इसके साथ ही गोत्र समाज के भंग होने के बाद, समाज के वर्गों में बंटवार को फलतः स्वामी-दास संबन्धों को तथा इनके साथ राज्य, राजनीति, कानून आदि को भी निश्चित करती है।”[१०] राजनीतिक-सत्ता ने इस माहौल को भिन्न शीर्षक एवं सत्ताओं में संयोजित करने का कारगर काम किया।

कला-क्षेत्र में इसका ठोस प्रभाव है कि भारत में लगभग दो सौ साल के औपनिवेशिक शासन ने देशी कला तथा संस्कृति को संरक्षण देने की पुरानी परंपरा से मुँह मोड लिया। अतः १९४७ में स्वतंत्रता पाते ही गैर-औपनिवेशिक राष्ट्र-राज्य ने कला तथा संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में राजकीय संरक्षण द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय 'स्वायत्त संस्थाओं' की स्थापना की, जैसे साहित्य अकादमी, संगीत-नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य-विद्यालय, फिल्म महोत्सव निदेशालय, संग्रहालय, पुस्तकालय, सांस्कृतिक केंद्र इत्यादि। इसी के साथ इन संरचनाओं के वित्तीय सहयोग के लिए फैलोशिप, अनुदान एवं पुरस्कारों की स्थापना की गई। लेकिन देशी कला तथा संस्कृति को संरक्षण देने के बजाय ये संस्थाएँ अपने उपनिवेशक (पश्चिम) के कला-मूल्यों एवं सौदर्यानुभूति - जो हमारे विकास-चक्र में सक्रिय थी, - का समर्थन करने लगीं।

औद्योगिक सौंदर्यबोध की यह विशेषता रही है कि वह प्रतिभा पर विश्वास नहीं करता। उसकी राय में उस व्यक्ति को भी कलाकार बना जा सकता है जिसमें कला की सहजात प्रतिभा न हो। औद्योगिक सभ्यता में कलाकार वही है जो यंत्रों की ध्वनि, गति और रंग के अनुसार अभ्यस्त होने को सक्षम हो। 'मुझे चाँद चाहिए' के आरंभ में 'मंचभीरु' के रूप में वर्षा दिखाई पडती है - "वह जानती थी कि वह बहुत संकोची, मितभाषी और मंचभीरु है - प्रकाश-वृत्त की करतल-ध्वनि से उसका कोई सरोकार नहीं।"[११]

मिश्रीलाल डिग्री कालेज की प्राध्यापिका 'मिस दिव्या' के प्रभाव से मंचभीरू वर्षा 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' में नायिका की भूमिका निभाती है। इस नाटक

की मंचप्रस्तुति से वह श्रेष्ठ अभिनेत्री के पद पर मशहूर होती है। यह प्रसंग प्रतिभाहीन कलाकार पर भी मशीनीकरण से होनेवाले अभूतपूर्व परिणाम का द्योतक है। यहाँ मशीनीकरण का असर नायिका के श्रृंगार-प्रसाधन, वेश-भूषा, गति से लेकर मंच-संयोजन की प्रत्येक पृष्ठभूमि में प्रकट होता है।

नाटक की प्रस्तुति में श्रृंगार-प्रसाधन के साथ नए सौंदर्यबोध में दर्शक के सामने आती वर्षा उनके लिए मायावी लोक की संचालिका जैसे लगती है। यहाँ दर्शक को नकली सौंदर्यचेतना में लुभाने की क्षमता रंगमचीय कार्यकलापों से उजागर होती है। नकली आभूषणों एवं प्रसाधन सामग्रियों से सजायी वर्षा खुद ही विभोर हो गयी थी। "आलता-लगे पांवों में रुनझुन पायलें, कमर पर चौडी करधनी... वक्ष की मध्य-रेखा पर दपदप करती मणिमाला... कानों में बडे-बडे गोल कर्णफूल... माँग के बीचोंबीच चमकती लडी वाला माथे का झुरमुट और काजल से तीखे किये नैन।"[१२]

रंगमंच प्रभाव के लिए मशीनीकृत नकली आभूषणों एवं रंगों का इस्तेमाल की विशिष्ट भूमिका रही है। वर्षा की मंच-प्रस्तुति पर दर्शक में से किशोर एवं झल्ली की प्रतिक्रिया इसकी अभिव्यक्ति है। "जब सौम्यमुद्रा ने अपने राजसी कक्षा में प्रवेश किया तो किशोर का मुँह खुला रह गया। कुछ पलों के बाद झल्ली आतंक से रूँधे स्वर में फुसकुसायी, 'छोटी जिज्जी'..."[१३]

बडी हद तक यह कला-प्रस्तुति तकनीकी प्रविधियों पर आधारित है। नाटक अंधेरे में ही प्रस्तुत किया जाता है। अतः कृत्रिम आलोक का प्रबंध अनिवार्य

बन जाता है। आलोक के मुताबिक चरित्र की गति, संवाद एवं भाव के अनुसार गति का समय, उसके पोशाक-आभूषण आदि के रंग का निर्धारण करना पडता है। यहाँ मंच-संयोजन में संगीत एवं प्रकाश-संयोजन का प्रबंधक ज्यादात्तर पुरुष होते हैं। दरअसल संपूर्ण मंच-प्रस्तुति में पुरुष का आधिपत्य प्रबल है। पुरुष अपनी पसंद के अनुसार स्त्री की पोशाक, गहनें आदि के रंग एवं रवैया निर्धारित करते हैं ताकि नारी, दर्शक के लिए मोहक बने। "मिस कत्याल पृष्ठभूमि संगीत तथा प्रकाश-संयोजन के प्रबंधकों के साथ क्यू शीट की दुरुस्तगी जाँच रही थी।"[१४]

एन.एस.डी. की मंच-प्रस्तुतियों पर पश्चिमीकरण एवं मशीनीकरण की सौंदर्यचेतना का खूब प्रभाव पडा है। 'मेघदूत थिएटर' में प्रस्तुत 'शाहजहाँ' इसका उदाहरण है। यहाँ मंचोपयोग के नए प्रतिमानों की पहचान होती, जो समग्र रूप से तकनीकी प्रविधियों से संचालित हैं। लिपटवां पर्दा नकली होने पर भी यथार्थ वातावरण के सृजन में अद्भुत क्षमता अदा करती है। यह उपनिवेशवादी नाट्य-सिद्धांतों के अनूरूप कला की अभिव्यक्ति है। साथ ही बुलंद आवाज़ एवं फ्लड़ लाइट्स के प्रयोग से दर्शकों को उत्तेजित करने के लिए तकनीकी असर का समावेश हुआ है। तकनीकी माहौल इतना प्रभावशाली है कि दो-ढाई घंटे की अवधि दर्शकगण जानता भी नहीं। " 'शाहजहाँ' की प्रस्तुति देखकर चतुर्भुज की संवेदना के तार झंकृत हो उठे।... लिपटवां पर्दों, फ्लड़ लाइट्स और बुलंद आवाज़ के सहारे दो-ढाई घंटों के 'प्रोग्राम को जमा देनेवाला' निर्देशक, प्रतीकात्मक मंचसज्जा, अलग-अलग शक्ति के अनेक डिमर प्रभावी पृष्ठभूमि संगीत और कलाकारों की कल्पनाशील ग्रुपिंग्स से अभिभूत हो गया।"[१५]

तकनीकी साधनों की वजह से सामंतवादी सौंदर्यचेतना का उपनिवेशवादी कला-दर्शन किस तरह विस्थापित होते हैं इसका जिक्र यहाँ मिलता है। तकनीकी प्रविधियों का इस्तेमाल दर्शकगण पर कारगर काम निबाहते है। इसका प्रमाण है एन.एस.डी. में चतुर्भुज द्वारा निर्देशित पहला नाटक 'अपना-अपना नर्क'।

नाटक के मंचन में नई तकनीकों एवं पश्चिमी सिंफनी का समावेश है, जो इसे अत्यंत प्रभावपुर्ण बनाता है। दृश्यबंध का उपकरण सादा होने पर भी रंगों का चयन महत्वपूर्ण संवेदना को अभिव्यक्त करता है। इसके साथ ही उसकी गति, समय और काल के अर्थपूर्ण व्यवहार से इसकी गति का असर, साथ जुडी हुई पश्चिमी सिंफनी, मंच प्रभाव में महत्वपूर्ण योगदान देता है। "सादा दृश्यबंध के उपकरण एवं रंग कथावस्तु की अवसादभरी बोझिलता को व्यंजित करते थे। गतियों तथा रंगव्यापार का प्रभावी और दुहरी अर्थवत्तायुक्त व्यवहार था।"[१६]

कैमरा का आविष्कार फिल्म तकनीक में अति परिवर्तनीय वाहक बना है। कैमरा से फिल्म के प्रत्येक दृश्य को कई 'शॉट्स' में विभाजित करके 'शॉट्स' लिया जाता है। अलग-अलग 'शॉट्स' को कहानी के अनुरूप जोड दिया जाता है जिसे संपादन कहते हैं। "डायरेक्टर ने इसे पाँच शॉट में बाँट दिया है। पहला शॉट तीसरे टेक में ओके हो गया है।... अब दूसरे शॉट के लिए मुझे फिर इमोशन को रिबिल्ड करना है। इस तरह पाँच हिस्सों में पच्चीस बार मुझे एक भावना को रूपाकार देना होता है।"[१७]

कैमरा के साथ कलाकार की गति समन्वित होना प्रमुख बात है। कला फिल्म 'जलती ज़मीन' में कैमरामान 'सुंदरम्' एवं निर्माता के ज़रिए कला में कैमरा की विशिष्ट भूमिका का जिक्र होता है जिससे नायिका वर्षा की चाल का शॉट्स लिया जाता है। " 'एपरेचर आठ पर रखो'। सुंदरम के निर्देश चल रहे थे, 'केयरफुल एबाउट फोकस-पुलर... जब मैडम आगे आती हैं, तो फोकस-शिफ्टिंग होगी'।"[१८] ध्वनि के सही प्रयोग के लिए भी साउंड रेकोडिस्ट अपने उपकरणों से उपस्थित है। साउंड रिकार्डर बटन दबाते हुए अपना काम करता है।

प्रत्येक घटना के आधार पर कलाकार पर तीव्रता लाने के लिए प्रकाश का उचित संयोजन तकनीश्यन, निर्देशक के आदेश के मुताबिक करता है। "साइलेंस, लाइट्स, कैमरा, साउंड और एकशन के आदेश दुहराए गये।... दाखाँ अकेली है, दाखाँ दुखी है, मन-ही मन सोचते हुए वर्षा ने सब्जी कढाई में छोडी फिर कडछी से चलाने लगी।"[१९]

वर्षा तकनीकी प्रविधियों के अनुरूप अभिनय करने में काबिल निकलती है, जिसके वास्ते उसे फिल्म निर्माता एवं निर्देशक से न्योता मिलता है। 'वर्षा' निर्देशों के मुताबिक खेलनेवाली एक कठपुतली के समान दिखाई पडती और ऐसे कलाकार ही औद्योगिक समाज की उपज है। वर्षा से साक्षात्कार के दौरान हुई बातें इसके द्योतक हैं - "फिल्म बुनियादी तौर पर निर्देशक का माध्यम है। अभिनेता उसके लिए कठपुतली के समान है। मैं खुशी से कठपुतली बनने के लिए तैयार हूँ, बर्शतें कि पूरी फिल्म का एक-एक फ्रेम निर्देशक के दिमाग में साफ हो, चरित्रों के मोड़, आपसी रिश्ते और विकासगत बारीकियों पर उसकी पैनी नज़र हो।"[२०]

पुरुषवर्ग से संचालित तकनीकी प्रविधियों के ज़रिए कलात्मक सौंदर्यचेतना पर हमला करते औपनिवेशिक वर्चस्व की घुसपैठ काफी मात्रा में हुई है, "सिद्धार्थ ने बताया, सबसे पहले झोंपड़ी के दृश्य फिल्मायेंगे। वर्षा के धीरे-धीरे चरित्र में उतरने के लिए उन्होंने इस अंश से शुरुआत की थी।"[२१] औद्योगिक क्रांति की वजह से कला-क्षेत्र के निर्दिष्ट प्रतिमानों पर असर पडता है। इसमें यथार्थ सौंदर्यबोध विस्थापित हो जाती है।

'मुझे चाँद चाहिए' में तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप कलात्मक सौन्दर्यबोध में विलक्षण बदलाव द्रष्टव्य है। तकनीकी उपकरणों एवं प्रविधियों के प्रयुक्त होने से मनोरंजन के नए प्रतिमान सक्रिय हो रहे हैं। "बडी व्यावसायिक फिल्म में नंबर दो स्टार के साथ यह पहला शॉट था। 'लाइट्स' के साथ एक पल को वर्षा के दिल की घड़कन ठिठकी, फिर समतल हो गयी।... 'कट!' हुसैन की आवाज़ आयी, 'ईरानी साब, इज़ इट ओके विद यू?' 'पर्फेक्ट!' उन्होंने मुस्कान के साथ कहा।"[२२] व्यावसायिक फिल्म की शूटिंग व्यवस्थित नकली वातावरण में ली जा रही है, हालांकी तकनीकी विकास के नए आयामों का नतीजा फिल्म उद्योग में नए रंग भरने लायक है। मुख्य रूप से समय, स्थान, ध्वनि और प्रकाश का संयोजन फिल्म उद्योग में नई पृष्ठभूमि का सृजन करता है। सूचनाशास्त्री जोसफ क्लापर का कथन है - "बाह्य रूप, ध्वनि की तीव्रता, गति, विभिन्न कोनों से कैमरा का प्रयोग एवं अन्य कई परिवर्तनशील बातें जो उत्पादन तकनीक से संबन्धित हैं, पेश करते संवाद की समग्रता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।"[२३] इसका उत्कृष्ट नमूना 'दर्द का रिश्ता' की शूटिंग संबन्धित माहौल में प्रस्तुत है।

आधुनिक सजावटों से व्यवस्थित बडी इमारत के वातानुकूलित कमरे में इसकी शूटिंग होनेवाली है। देर तक अपने आभूषणों एवं पोशाक से संजोकर नायक विमल की प्रतीक्षा में बैठी वर्षा उस वातावरण से खुद ही परिचित होती है। “वह आठ बजे आ गयी थी। नौ पर तैयार हो गयी थी।... वातानुकूलित फ्लोर पर आते ही ठंडक का भला गिलाफ अपने में समेटने लगा।... तमाम लोगों की निगाहों को अपने ऊपर महसूस करते हुए वर्षा ने सेट का जायजा लिया।”[२४] नायक विमल के आने पर शूटिंग का आरंभ होता, उसने निर्देश के अनुसार प्रकाश के अनुरूप विमल की ओर मींठे ढंग से देखते हुए एक कदम आगे बढी और संवाद दिया। “ ‘ओके, प्रिंट’!” हुसैन बोले, ‘अब दोनों ‘आर्टिस्टों’ की अलग-अलग एंट्री और क्लोजअप लेते हैं’।”[२५] प्रकाश से संतुलन पाए उनकी गति और समय का बंदोबस्त सही निकला। इन दोनों कलाकारों को अलग-अलग लेने का निर्णय हुआ जो बाद में उपयुक्त रूप में जोडे जाते हैं। यह मशीनीकरण की विकसित तकनीकों सुविधाओं का संकेत है।

मशीनीकरण से उपजी कलात्मक माँगों के तहत वर्षा सफल अभिनेत्री बन चुकी थी। तकनीकी प्रभावों के सामने वर्षा की विशिष्ट भूमिका दर्शकों को काफी लुभाने लायक निकली। औद्योगिक सभ्यता के औपनिवेशिक एवं पुरुष वर्चस्व से रूपायित सौदंर्यचेतना में नारी का स्वरूप इनके हितानुसार ढालने में वे अभूतपूर्व भूमिका अदा की है।

2.2.2. कला और प्रशिक्षण

औद्योगिक क्रांति का नतीजा यह निकला कि सामाजिक स्तर पर अनुशासित प्रतिमान - शिक्षा, व्यापार, कला आदि तमाम क्षेत्रों में प्रकट होने लगा। सामाजिक स्तर पर छोटी इकाइयों का सृजन हुआ जैसे संगीत में 'आर्कस्ट्रा' का आविर्भाव, एक नेता के साथ एक अनुशासित इकाई का गठन। आलोचक सुधीश पचौरी का कहना है, "औद्योगिक समाज उत्पादन और मशीन के इर्द-गिर्द संगठित माना जाता है। पूर्व-औद्योगिक समाज कच्चे मानव-श्रम पर निर्भर था और प्रकृति के स्रोतों के सीधे उपयोग पर निर्भर था। औद्योगिक समाज ने सामाजिक संरचना को एक केन्द्रीकृत व्यवस्था दे दी।"[२६] सामाजिक संरचना के निर्दिष्ट प्रतिमानों के अनुकूल कलात्मक सौंदर्यचेतना रूपायित करने में 'मुझे चाँद चाहिए' का प्रशिक्षण परिवेश सकारात्मक भूमिका निभाती है।

उपन्यास में केन्द्रपात्र वर्षा को औपनिवेशिक ढाँचे में ढालने का प्रयास उसके प्रशिक्षक करते हैं। यह कला के पश्चिमीकरण का परिणाम है। आलोचक शिव नारायण सिंह का कथन है - "बाहर से वस्तुओं और विचारों के आयात का सिलसिला पुराना है और यह मान्यता अपने-आप में गलत नहीं थी। भारतीय आधुनिकता तक पश्चिम की देन हैं।"[२७] वर्षा के कला प्रशिक्षण में श्री मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज की प्राध्यापिका मिस दिव्या कत्याल की विशिष्ट भूमिका रही है। उसके आचार-विचार और व्यवहार-संहिता में पश्चिमी वर्चस्व का प्रमाण प्रबल है। वर्षा इससे खूब ललायित होती है। वह उसके संसार में नए क्षितिज खोल देती है।

साहित्य के अध्ययन में इतनी गहरी अभिव्यक्ति उसके लिए नयी पहचान थी। “क्लास में वर्षा रुक-रुककर, लुके-छिपे, दृष्टि की संपूर्ण गहराई से उन्हें निहार लेती। उन्होंने वर्षा के ‘संकरे से संसार में नए क्षितिज खोले थे।”[२८] वर्षा दर्जे में प्राध्यापिका से आपसी रिश्ता स्थापित करती है। इसके फलस्वरूप उसकी महत्वाकांक्षा यों प्रकट होती, “मेरा बस चले, तो मैं आकाश की दहलीज़ पर बनी सात रंगों की इंद्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुंतला की प्रिय ‘वन-ज्योत्स्ना’ सखी बनूँ, चंद्रमा को देखकर खिल जाने वाली कुमुदनी बनूँ।”[२९]

दिव्या से हुई मुलाकात, वर्षा के मन में ‘सतरंगी इंद्रधनुष’ को दिखाने में सक्षम होती है। दिव्या के कलेवर, पश्चिमी संस्कृति से नियंत्रित भाषिक प्रयोग, अंग्रेज़ी साहित्य के चमत्कारपूर्ण प्रसंग आदि वर्षा की कला के मिश्रण, कला के देश और काल से परे होने के नियम संबन्धी समस्याओं को सुलझाते हैं। दिव्या ने वर्षा के आर्थिक अभाव में उसकेलिए दो बोर्डरों को ट्यूशन लेने का मौका बंदोबस्त किया था। इसके वेतन मिलने पर उससे महसूस किए कलात्मक अनुभव की पहचान दो वर्ष बाद दिल्ली में साथियों के साथ फिल्म देखने पर ही महसूस होती है। “वे आज की यही पल थे, जिन्होंने उसे सबसे पहले कलात्मक अनुभव की सार्वभौमिकता के नियम से परिचित करवाया।”[३०] असल में कलात्मक सौंदर्यचेतना काल और समय से परे हैं। इस प्रसंग से वर्षा प्रशिक्षण के दायरे में पड जाती है। यहाँ औद्योगिक समाज-व्यवस्था का निर्धारित सौंदर्यबोध प्रकट होता है।

श्री मिश्रीलाल डिग्री कालेज में नियुक्ति पाते ही दिव्या सौंदर्य के

रूढिगत प्रतिमानों पर प्रश्नचिह्न लगा देती है और उन्हें विचलित भी कर देती है। वह कला की प्रतिष्ठित प्रथा के विरुद्ध 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की प्रस्तुति कर देती है। आखिर वह 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' की प्रस्तुति विद्यार्थियों के सहयोग से करती है। "करीब पंद्रह आलोकांक्षी अपने संवाद बोल चुके थे।... अचानक उन्होंने वर्षा की ओर इशारा किया, 'वर्षा, पेज ग्यारह-वासवी... रक्षा, तुम सौम्यमुद्रा...' "[३१] पंद्रह कलाकारों से मिस दिव्या इस नाटक के लिए वर्षा को चुन लेती है। नाटक प्रस्तुती के लिए वर्षा के चयन का एकमात्र कारण है कि वर्षा 'मंचभीरु' थी। दिव्या जानती थी कि ऐसे व्यक्तियों पर प्रशिक्षण के तंत्रों का अनुप्रयोग हो जायेगा।

दिव्या औद्योगिक सभ्यता का सशक्त समर्थक है। अतः उससे संचालित नाटक 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' नारी की दुहरी औपनिवेशिकता का दस्तावेज है। वर्षा की ज़िंदगी में नाटक के नए कार्यक्षेत्र से मन को शांति मिलने लगी एवं संतोष के नए क्षितिज़ खुलने लगे। इसके वास्ते उसकी ज़िंदगी में कमियों की पूर्ति एवं कल्पना से परे का सुख प्राप्त होता था। मिस दिव्या को फ्रेंड, फिलोसफर एवं गैड के तौर पर देखती वर्षा, जब अपनी मंच प्रस्तुति के बारे में पूछती है तो दिव्या उसकी कमियों का जिक्र करते हुए कलाकार की शक्ति का संकेत करती है, "स्टेज पर कलाकार की बहुत बडी शक्ति है।... उसकी आँखें ... वर्षा रानी, तुम्हारे तो ऐसे सुंदर, मन में सेंध लगानेवाले खंजन नैन है! थोडा इनका इस्तेमाल सीखो न!"[३२] यह प्रसंग इसका गवाह है कि तकनीकी प्रविधियाँ किस हद तक अभिनेता की कमज़ोरियों को छिपाकर उसे कलाकार की प्रतिष्ठा देती है। सही कलाकार न होने पर भी तकनीकी साधन कला के संवरण में कलाकार को रख देता है।

वर्षा की प्रशिक्षण-प्रणाली में दिव्या की भूमिका विशिष्ट रही। वर्षा की पहली मंच-प्रस्तुति के बाद अंग्रेज़ी फिल्मों एवं फिल्मी गीतों से वर्षा को परिचित करने की कोशिश दिव्या से होती है। "रविवार को सुबह के शो में कोई अच्छी अंग्रेज़ी फिल्म होती (हफ्ते में एक ही शो होता था), तो दोनों वहाँ जातीं। 'सिटी लाइट', 'ब्रिज ऑन द रिवर क्वाई', 'जायंट्स्', 'ए प्लेस इन द सन', 'टु कैच ए थीफ', 'क्लियोपेट्रा' इत्यादि ने एक नया अनुभव-संसार उसके सामने खोला।"[३३] दिव्या के माध्यम से वर्षा पश्चिमी सौंदर्यचेतना से विभोर हो जाती।

वर्षा को मिस दिव्या के रिश्ते से उसकी हिदायत पर पुस्तकालय से संपर्क होने का, खुद प्रबुद्ध होने का मौका भी उपलब्ध होता है। "इस लायब्रेरी में उपलब्ध लगभग सारे मौलिक तथा अनूदित नाटक वह पढ़ चुकी थी। किसी नयी किताब की अच्छी समीक्षा आती, तो वह पता इत्यादि नोट करके पुस्तकालयध्यक्ष को दे देती, ताकि उसको मँगवाने का आदेश दिया जा सके।"[३४] वह अपने खाली पिरियड भी पुस्तकालय में बडी लगाव से क्रियात्मक होती थी। इसके नाते वह पश्चिमी सौंदर्यबोध से अनूठा संबन्ध रखती है।

उपन्यास में हर्ष पश्चिमी सौंदर्यबोध का समर्थक है। वरिष्ठ अई.पि.एस. पिता का अकेला बेटा अभिनय के प्रति जन्मजात रुचि रखता था। मॉर्डेन स्कूल से निकलकर उसने सेंट स्टीफन्स से अंग्रेज़ी साहित्य में प्रीवियस किया, बीच में साहित्य को छोडकर नाट्य विद्यालय की ओर मुड गया था। वहाँ की पश्चिमी शिक्षा प्रणाली और कला तकनीकों ने उनके नज़रिए को रूपायित किया था। वह संस्कृत

नाटक को निचले स्तर का मानता था। वर्षा जब-कभी संस्कृत नाटक की खूबी पर बोलती तो हर्ष के लिए यह सिर्फ 'खाली स्पेस में' अभिनेता का शरीर होता। हर्ष की कडवाहट उसके संवाद में प्रकट होती है, " 'वह तुम्हें मोहक इसलिए लगी, क्योंकि तुम्हारी भूमिका से उपजी है।'... 'आई रियली हेट दिस संस्कृत शिट!'... 'अगर तथाकथित जडों की तलाश और पुनरुत्थान का तकाजा न हो तो, पूरे संस्कृत में एक नाटक नहीं, जो पश्चिम के मुकाबले खडा हो सके'।"[३५]

हर्ष के अनुसार संस्कृत नाटक में कोई तर्क या नज़रिया नहीं, सिर्फ 'शब्दों का ढकोसला' है, नाटक सिद्धांत के अनुसार इसमें नाटकीय विकास नहीं महसूस होता।

फिल्मी दुनिया में खूब भडकने के बाद हर्ष की महत्वाकांक्षा सफल होने की गुंजाइश द्रष्टव्य है। उसके समकक्ष एंड्री के साथ 'मुक्ति' फिल्माने के प्रयास में उनकी प्रशिक्षण-प्रणाली के तौर-तरीके द्वारा ऊँचे स्तर पाने की कामना प्रकट की है - "एंड्री ने कहा था, 'मेरी मान्यता है कि माध्यम के सशक्त, कल्पनाशील व्यवहार के साथ ... हम दर्शकों को सिनेमाघर तक ला पाने में सफल हो सकते हैं। प्रभात, राजकमल, विमल रॉय और गुरुदत्त की विरासत हमें याद रखनी चाहिए'।"[३६]

उपनिवेशित समाज यांत्रिक नियमबद्धता को सचेत या अचेतरूप से स्वीकार करता है। उपन्यास में एन.एस.डी. कला के प्रशिक्षण की भूमिका को निभाता दिखाई देता है। स्वतंत्रता के पश्चात् संस्थापित नाटक-प्रशिक्षण का यह

केन्द्र औद्योगिक-सामाजिक संरचनाओं की पुष्टि कला के प्रशिक्षण के माध्यम से करता है। उपन्यास में ज्यादात्तर प्रसंग एन.एस.डी. के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यहाँ की तकनीकी, वैचारिक तथा सांस्कृतिक सोच नई सौंदर्य संवेदना को रूपायित करती है। वर्षा एवं अन्य शिक्षार्थियों को औपनिवेशिक सौन्दर्य संवेदना के अनुरूप गढने में एन.एस्.डी. का प्रशिक्षण महत्वपूर्ण दायित्व निभाता है। एन.एस.डी. भारतीय और पश्चिमीय नाट्य-पद्धति के प्रशिक्षण से कोई भी व्यक्ति को व्यावसायिक बनाने की कोशिश में है, "नाट्य-सिद्धांत और नाटक के इतिहास के साथ चार संस्कृत नाटक, छः आधुनिक भारतीय नाटक, चार एशियाई नाटक और छः पश्चिमी नाटकों का अध्ययन करना था।... प्रदर्शनपक्ष में हर साल छः प्रमुख प्रस्तुतियाँ थी - एक संस्कृत या पारंपरिक लोक-नाट्य, दो आधुनिक भारतीय नाटक और तीन पश्चिमी नाटक।"[३७]

एन.एस.डी. प्रशिक्षण प्रसंग में सबसे प्रासंगिक मंच-प्रस्तुती है - 'अपने-अपने नर्क'। यह नाटक न्यूयार्क में ही छपा था। इसके निर्देशक चतुर्भुज है। इसकी पृष्ठभूमि पश्चिम की होती है। इसमें केवल दो पात्र हैं - दुमेगो एवं शान्या। यहाँ शान्या को अंतर्राष्ट्रीय संघ द्वारा आयोजित परिसंवाद में भाग लेने के लिए प्रतिनिधि मंडल ने चुन लिया है। इससे दुमेगो भी उत्साहित है कि दोनों का भविष्य उज्ज्वल होने की संभावना है।

नायक दुमेगो, शान्या से पूछताछ करता है और व्यवस्था के मुताबिक उसका प्रयोजन उठा लेता है, अपने लिए गिटार लाने का आदेश देते हुए - "दुमेगो

का फोन आता है। वह दिनदहाडे की लूट, हिंसा और अश्लीलता के बारे में सवाल पूछता है। फिर अपने लिए गिटार लाने का अनुरोध करता है।"[३८] प्रशिक्षण के दौरान औद्योगिक व्यवस्था में पुरुष वर्चस्व प्रतिष्ठित रखने में सक्षम दीखती है।

एन.एस.डी. की प्रशिक्षण प्रणाली औद्योगिक सभ्यता के सौंदर्यबोध पर आधारित है। यहाँ कला-प्रस्तुति के लिए वेश-भूषा का स्केच पुस्तकालय की उन किताबों से बनाना पडता है जो औपनिवेशिक संवेदना के समर्थक हैं। साथ ही एन.एस.डी. की पाठ्य-पद्धति में पाश्चात्य मंच-विधान, वेश-भूषा, ध्वनि एवं प्रकाश-योजना आदि प्रमुख पक्ष हैं। "वर्षा ने देर रात तक पात्र-सूची सामने रखकर नोट्स लिए। अगले दिन लंच उसने दस मिनट में खत्म किया और नारी पात्रों की वेशभूषा का रेखाचित्र बना लिए।"[३९]

एन.एस.डी. के निर्देशक डॉ. अटल ने अपनी पश्चिमी सौन्दर्य-चेतना को वर्षा के भीतर ठूँसने का सफल प्रयास किया है। वे वर्षा को नाटक संबन्धी ऐसे समानुदेशन देते हैं जिनको निभाकर वर्षा उपनिवेशवादी कला सभ्यता के नज़दीक पहुँचती है। "वर्षा, कल शाम तुम मुझे पच्चीस प्रतिनिधि उर्दू कविताओं की सूची दे रही हो। दो दिन बाद इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में चार और साथियों के साथ तुम्हें उनका पाठ करना है।"[४०]

इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ ज़रूर औद्योगिक सौंदर्यबोध की ओर संकेत करती है। यह कला क्षेत्र में हुए पश्चिमी प्रभुत्व का सूचक है।

धीरे-धीरे संस्कृत नाट्य शैली से वर्षा पश्चिमी कला संस्कृति की ओर बढती दिखाई देती है। "डॉ. अटल के अनेक अमृत-वचन सिलबिल के स्मृति-कोश में सुरक्षित हो रहे थे - ... 'रंगमंच आत्मरति का सिंहद्वार नहीं', 'प्रस्तुति के ताने-बाने में रुमाल उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना ऑथेलो - - एक सच्चे कलाकार को ये दोनों ही भूमिकाएँ स्वीकार होनी चाहिए।"[४१]

डॉ. अटल ने अपनी प्रशिक्षण-पद्धति में पाश्चात्य नाटकों का सहारा लिया है। 'चेखव' के (सीगल) 'हंसिनी', 'तीन बहनें' आदि के मंचन की वजह से औपनिवेशिक अवधारणाओं का प्रचार करता है। अंग्रेजी एवं अंग्रेजियत की प्रतिष्ठा बढाने में एन.एस.डी की विशिष्ट भूमिका है।

डॉ. अटल की शिक्षण-प्रणाली का यह नतीजा हुआ कि वर्षा ने संस्कृत नाटकों के साथ जो रागात्मक संबन्ध रखा था, उसे वह बिलकुल छोड देता है और पश्चिमी नाटक में कला का असली जगत देखती है। "मत भूलो कि रंगमंच में तात्कालिकता एवं अनुशासन बहुत महत्वपूर्ण है। अगले वर्ष फ्रांस से मिस्टर पैरों आ रहे हैं। पंद्रह सितंबर को 'द लाक' का पहला प्रदर्शन होगा।"[४२]

एन.एस.डी. में पश्चिमी प्रशिक्षण-प्रणाली का तरीका किसी व्यवधान के बिना संचालित होता है। पश्चिमी प्रशिक्षण-प्रणाली की घुसपैठ आर्थिक योगदान के रूप में भी दिखाई पडती है। डॉ. अटल इस तौर पर प्रशिक्षार्थियों की हिमायत में विदेशी संस्थानों से सिफारिश करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में एक शिक्षार्थी का कथन है।

"यास्मीन ने मुझे बताया था। जब उसे फेडेरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी की स्कॅलरशिप मिली, तो वह अचंभे में आ गयी।"[४३] वर्षा के लिए भी डॉ. अटल ने सिफारिश की थी।

एन.एस.डी. प्रशिक्षण के बीच दो दिन के लिए लखनऊ में दिव्या के घर जब वर्षा पहूँची तो वह काफी विवश दिखाई पडती है। एन.एस.डी. में उसकी पहली मंच-प्रस्तुति का पराजय वर्षा पर आघात पहूँचाया था। उससे प्रस्तुत नाटक 'बेवफा दिलरूबा' की असफलता से उसको लगता है कि वह कलात्मक स्तर पर सिर्फ छोटे शहर की ही है। तब दिव्या प्रशिक्षण में ही सारी कलात्मक चुनौतियों का समाधान ढूँढती है - "पर तुम इस तरह निराश न हो। कलात्मक प्रशिक्षण ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें काले-उजले क्षण आते रहते हैं।"[४४] वर्षा की परेशानी में उसे हिमायत देनेवाली दिव्या प्रशिक्षण के तौर पर पश्चिमी वातावरण का समर्थन करते दीखती है।

एन.एस.डी. और इसका परिवेश समाज में सांस्कृतिक भूमिका निभाने में सक्षम है। एन.एस.डी. के प्रशिक्षण के बाद बाहर निकलते कलाकार कभी व्यावसायिक मंच पर ऊँचा स्थान पाते हैं। वे निर्देशक, कलाकार, रंगमंडली संचालक आदि विभिन्न स्तर पर प्रतिष्ठित होते हुए सांस्कृतिक चेतना रचाने में अतुल्य भूमिका निभाते हैं। "प्रशिक्षण के बाद पश्चिमी, दक्षिणी तथा पूर्वी अंचलों के तमाम छात्र वापस लौटे थे। ... बंगलौर में शिवप्पम का नाट्यदल रंगश्री' बहुत प्रतिष्ठित था। ... वेणु ने हुबली के पास के अपने गाँव में सांस्कृतिक केंद्र खोला

था। वहाँ वह मंचनों के साथ-साथ सिनेमा क्लासिकों का प्रदर्शन भी करता था। त्रिवेंद्रम और कोचिन में भी विद्यालय के लोग सक्रिय थे।"[४५] विभिन्न प्रांतों में रंगमंडलियों के कार्य-व्यापार स्वतंत्र रूप से सक्रिय होने के मिसाल यहाँ मिलते हैं।

उपन्यास में कालिदास की रचनाओं के द्वारा सामंतवादी सौदर्यबोध का पर्दाफाश हुआ है। इस सामंतवादी सौदर्यबोध के समर्थन के रूप में वर्षा के पिता शर्माजी का चित्रण हुआ है।

औपनिवेशिकता की वजह से सामंती सौंदर्यचेतना मशीनीकरण और प्रशिक्षण की प्रक्रिया के अनुरूप बदलती है। कलाकार के स्तर पर हर्ष का कला संबन्धी द्वन्द्व 'कंपन' फिल्म में विद्यमान है। दैनिक जीवन में मशीनी-तकनीक की घुसपैठ ने साहित्य एवं संस्कृति की प्रकृति को बदल दिया। सामंतवादी कला की पृष्ठभूमि से औपनिवेशिक कला-दौर में पहूँचती 'वर्षा' मशीनीकरण की चुनौतियों का सामना करती है।

औपनिवेशिकता ने कला की सृष्टि, संप्रेषण, आस्वादन, समीक्षा आदि सभी स्तरों पर प्रभाव डाला। उसने कला के क्षेत्र में प्रशिक्षण की भूमिका को अनिवार्य बताया। औपनिवेशिक सौंदर्यबोध के अनुसार वही कलाकार होगा जो मशीनों की गति, रंग, ध्वनि आदि के अनुरूप खुद को ढालने में प्रशिक्षित हो। उपनिवेशवादी सौंदर्यचेतना कला और प्रतिभा की सहजात वृत्ति को नकारती है और प्रशिक्षण को ही कला का अनिवार्य तत्व घोषित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ

१ Alvin Toffler, The Third Wave, (Pan Books, 1981), 10.
"The first wave of change - the agricultural revolution - took thousands of years to play itself out. The second wave - the rise of industrial revolution took a mere three hundred years. Today history is more accelerative and it is likely that the third wave will sweep across history and complete itself in a few decades."

२ सुरेन्द्र वर्मा, मुझे चाँद चाहिए, (नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्रै. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), १७

३ वही, ४३

४ वही, ५०

५ वही, २२

६ वही, ३२

७ प्रॊ. सत्यमित्र दुबे, "भूमण्डलीकरणः समाजशास्त्रीय विवेचन", अक्षर पर्व, अप्रैल २००७, १७

८ नरेश चंद्रकर, एडवर्ड सईदः एक जा हर्फे..., वागर्थ, मई २००८, ८३

९ डॉ. रामविलास शर्मा, 'आस्था और सौदर्य' (नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, १९९०) ३३

१० कुंवरपालसिंह (सं), साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद (दिल्लीः पीपुल्स लिटरसी, १९८५), ५९

११ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), २७

१२ वही, ३७

१३ वही, ३८

१४ वही, ३७

१५ वही, १०७

१६ वही ११०

१७ वही, ३२५

१८ वही, २९६

१९ वही, २९७

२० वही, ३२५

२१ वही, २९५

२२ वही, ३४०

२३ Joseph T. Klapper, The Effects of Mass Communication, Free Press, 1960, 112.
"Format, volume, pace, camera angles and a thousand other variables similarly associated with production techniques have been found to affect the overall effectiveness of given communication."

२४ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ३३७

२५ वही, ३४०

२६ डॉ. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, (नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्र.लि., २०००), ४९
२७ शिवनारायण सिंह, आधुनिक भारत की द्वद्वकथा, (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००५), २७
२८ सुरेन्द्र वर्मा, ‘मुझे चाँद चाहिए’ (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), १९
२९ वही, २०
३० वही, २२
३१ वही, २९
३२ वही, ५०
३३ वही, ५१
३४ वही, ५४
३५ वही, १६८
३६ वही, ४६०
३७ वही, ९७
३८ वही, १०९
३९ वही, १२६
४० वही, १२८
४१ वही, १२८
४२ वही, १३३
४३ वही, १२५
४४ वही, १४१
४५ वही, १८६